ॐ रघुपति प्रिय भक्ताय नमः

एकादशो अध्यायः

श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद

'विश्व रूप दर्शन योग'

अध्याय

दोहा- हर्षित होकर देव सब, प्रभु का करें शृंगार।
बरसे प्रभु पर व्योम से अनुपम पुष्पाहार॥

राग द्वेष और मोह से, मन हो गया उचाट।
अर्जुन के खुलने लगे थे अब ज्ञान कपाट॥

दीन बंधु, दुःखहारी, दयामय, प्रभु द्रवित हों।
परम पावन प्रेरणा दे, फिर क्यों कोई पतित हो।। 01

क्या कहूँ, कैसी कृपा की, किस तरह क्या क्या कहा?
हट गया अज्ञान सब, अनुपम अनुग्रह है अहा।। 02

भूत भव, भव तव्यता, भो भूत ईश्वर भाष की।
हेतु कारक की कथा, फिर कथा उनके नाश की।। 03

शंभु प्रिय सम्भाव्य सब कैसे है? सम्भव कीजिए।
शक्ति बल, ऐश्वर्य दर्शित, दिव्य दर्शन दीजिए।। 04

अल्प हूँ, अल्पज्ञ हूँ, अनुपम, अनासन रूप को।
देख लूँ जी भरके कर लूँ धन्य अर्जुन जीव को।। 05

देख मेरा रूप जो सबको नहीं संज्ञार्थ है।
नाना आकृति वर्ण जो अब तक न देखे पार्थ है।। 06

गिन ये द्वादश सूर्य है, वसु आठ, ग्यारह रूद्र हैं।
जो न देखे देख अश्वनि, और जितने मरूत हैं।। 07

एक मेरा रूप जिसमें, सृष्टि सारी व्याप्त है।
जो भी चाहे देख ले, जब तक तेरा मन आप्त है।। 08

पर न देखा आयेगा, आँखों से नि:सन्देह है।
अस्तु ले ये दिव्य चक्षु, तेरी मानव देह है।। 09

दोहा- दिव्य चक्षु थे स्वयं भी, संजय हुये निहाल।
हर्षित हो कहने लगे, आँखों देखा हाल।।

कोटि बज्र, विद्युत छटा, स्तम्भित था काल।
विश्व रूप प्रभु का निरख, दहल उठे दिक्पाल।।

दिव्य भूषण, दिव्य माला, दिव्य मणि दर्पित हुये।
कोटि चक्षु, कोटि मुख प्रभु, कोटि सिर दर्शित हुये।। 10

कोटिश: आदित्य प्रकटें, एक साथ प्रकाश हो।
विश्व प्रभु की कांति सम, फिर भी कदाचित् भास हो।। 11

देव कोटिक, ब्रह्म जड़, चेतन व उनका भ्रंश था।
और अति अद्भुत कि यह सब प्रभु का बस एक अंश था।। 12

रोम पुलकित, चित चकित, विस्मित सुभद्रा नाथ थे।
परम श्रद्धा भक्ति से, बोले झुकाकर माथ वे।। 13

देव है, सब भूतगण, शिव, ब्रह्म कमलासन अहा।
ऋषि, महर्षि और भयंकर, सूर्य कितने हैं ह हा।। 14

हैं अनेकानेक बाहु, मुख अनेकों नेत्र हैं।
आदि, मध्य और अंत बिन प्रभु के अनेकों पेट हैं।। 15

गदा, चक्र और मुकुट युत, इस तेजमय संसार की।
सूझती सीमा नहीं है, आपके विस्तार की।। 16

हे प्रभुः तुम परम अक्षर, परम ब्रह्म, परमार्थ हो।
परम आश्रय, परम रक्षक, और परम पुरुषार्थ हो।। 17

चन्द्र कोटिक, सूर्य सम तब नेत्र प्रभु आरक्त हैं।
अग्नि सम, मुख लोक जन सब हो रहे संत्रस्त हैं।। 18

हर दिशा, हर छोर फैली, आपकी ही है कथा।
अति भयंकर, उग्र हो प्रभु, लोक पाते हैं व्यथा।। 19

रूद्र, वसु, गंधर्व, अश्वनि, देव सब साहचर्य से।
आपके विग्रह ही प्रभु की देखते आश्चर्य से।। 20

अति भयंकर, नेत्र, मुख, बहु हाथ, जंघा, पैर हैं।
काल सी विकराल दाढ़ें, डोलता मम धैर्य है।। 21

अति अलौकिक दीप्ति है प्रभु, गगनचुम्बी कांति है।
हो रहा भयभीत अर्जुन, खो रहा मन शांति है।। 22

लपलपाती अग्नियुत दाढ़ें बहुत विकराल हैं।
दिग्भ्रमित अति दुखित प्रभु हर ओर दिखता काल है।। 23

स्वयं ही सब सिद्ध है, हर ओर प्रभु का वास है।
अब करें मुझ पर कृपा, प्रभु आप जगन्निवास हैं।। 24

द्रोण, भीष्म, कर्ण, आदिक और शत कुरू पुत्र हैं।
और वे योद्धा भी सारे, जो हमारे मित्र हैं।। 25

हो विवश जाते हैं मुख में, वे जो बल से पूर्ण हैं।
और कुछ दांतों में चिपके, दिखते जैसे चूर्ण हैं।। 26

नदी, नद, अम्बुधि में जा, ज्यों वेग अपना भूलते।
वीर, बलशाली लगें यों, प्रभु के मुख में झूलते।। 27

ज्यों पतंगा मोहवश छूता है अग्नि पाश को।
यों ही मुख में जा रहे, सब लोक अपने नाश को।। 28

प्रज्ज्वलित मुख में लगे प्रभु, लोक सारे ग्रास से।
और ज्वलित जिह्वा से लगते आप सबको चाटते।। 29

आपका यह रूप कहने में सभी गण मौन हैं।
आप ही बतलाइये, विश्वेश हमको कौन हैं।। 30

लीलने को लोक प्रकटा, मैं प्रबल अति काल हूँ।
तू न चाहे, तो भी सबकी, जान का जंजाल हूँ।। 31

अस्तु उठ, यश पा ले, देना मृत्यु मेरा काम है।
कर ले शर संधान, तेरा सव्य साची नाम है।। 32

पूर्व से ही मृत हैं मुझसे तू न सबका मीत हो।
पा विजय और मार सबको पार्थ मत भयभीत हो।। 33

दोहा- चौंके अर्जुन बचन सुन, देखा सबका होम।
भयवश जड़वत् हो गये, कांप गये सब रोम।।

'साष्टांग कर दंडवत्, अति भय आकुल पार्थ।
बोला गद्गद् कण्ठ से, होकर अतिशय आर्त।।'

विश्व अन्तर्मन के स्वामी, आपको सब भोग्य है।
सिद्ध है गुणनाम प्रभु, जो कुछ करें सब योग्य है।। 34

भागते भयभीत राक्षस, दैत्य सब दिशिभाग को।
सिद्ध योगी कीर्तन कर पा रहे अनुराग को।। 35

पुरुष पहले, देव पहले प्रथम आश्रय धाम हो।
अन्तहीन अनन्त प्रभु तुम शोध के सामान हो।। 36

वरूण, वायु, ब्रह्म, अग्नि, प्रजापति प्रभु चंद्रमा।
नव नमन् सत्वर नमन पुनि पुनि नमन् शतशः नमः।। 37

दायें, बायें, भूमि नत हो, सामने से, पृष्ठ से।
अनन्त, विक्रम दंडवत् कर्तल से है, अंगुष्ठ से।। 38

मूढ़, अज्ञानी, प्रमादी हो के ही निशिदिन रहा।
जाने अंजाने विशम्भर आपसे क्या क्या कहा।। 39

गोविन्द माधव हरे मुरारे, हे कृष्ण हे यादव, हे सखा।
क्षमा प्रभु शत् शत् क्षमा, जाने बिना जो कुछ कहा।। 40

पिता, गुरू अति पूज्य हो, जितने जहां तक लोक हैं।
अप्रतिम, अनुपम, अलौकिक, आपका आलोक है।। 41

भूमिनत करबद्ध हो प्रभु कर रहा आराधना।
शांत प्रभु हो जाइये अब सुनके मेरी प्रार्थना।। 42

प्रियतमा को पति ज्यों सहता, मित्र सहता मित्र को।
यों सहन कर लो मुझे ज्यों पिता सहता पुत्र को।। 43

जो न देखा आज तक वह देखकर आह्लाद है।
अति भयंकर रूप प्रभु पर दे रहा अवसाद है।। 44

गदा, चक्र और मुकुट युत हो, तेज साधारण करें।
सहस्त्र बाहु, भुवन मोहन रूप फिर धारण करें।। 45

मित्र यदि अनुनय करे, तो कैसे टाला जायेगा।
विदित था तुझसे न ये विग्रह संभाला जायेगा।। 46

योग दर्शन, ज्ञानदर्शन, तो सुना था सूर्य ने।
पर किसी ने भी न पाया विश्व दर्शन पूर्व में।। 47

यों न दिखता मैं किसी को, यज्ञ, तप या दान से।
किन्तु मैं आबद्ध हूँ, तेरी भक्ति से, सम्मान से।। 48

हो न व्याकुल देख कर, मेरे विराट स्वरूप को।
ले मैं करता हूँ प्रकट, फिर से चतुर्भुज रूप को।। 49

दोहा- कमल नयन कोमल बदन, कर कपोल थे लाल।
पुनः मोहिनी रूप में प्रकटे दीन दयाल।।

मन अचेतन, पुनः चेतन, शांत हे हरि! हो गया।
चक्रवाती पवन मानों फिर से स्थिर हो गया।। 50

भाव विह्वल भक्तिवश हो, फिर से अम्बुज हो गया।
देव दुर्लभ रूप मेरा, यों चतुर्भुज हो गया।। 51

यों न दिखता मैं परन्तप, दान, तप या यज्ञ से।
पर सुलभ सर्वत्र एकी भाव स्थित भक्ति से।। 52

मेरा कर्मी, मुझसे जो अन्यन्य मुझमें डेरा है।
वो जहां जैसा भी है, मेरा है, केवल मेरा है।। 53

दोहा- भाव विह्वल थे देव गण, सबके गद्‌गद् कंठ।
डूब गये प्रभु प्रेम में, नीलकंठ आकंठ।।

विश्व रूप को ध्यान धरि, पाठ करें चितलाइ।
तिन पर बरसत प्रभु कृपा, जनम स्फल हो जाय।।

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
विश्व रूप दर्शन एकादश अध्याय समाप्त।